अध्याय चौथा

जैनेन्द्र के उपन्यास और नैतिकता ।

अ) जैनेन्द्र के विभिन्न उपन्यासों में नैतिकता को व्यक्त करने वाली घटनाओं का परिचय सहित संकलन ।

ब) घटनाओं का विश्लेषण और विवेचन ।

१) आदर्श या घटना पर निर्भर नहीं ।

२) अश्लीलता और कामोत्तेजक वर्णन ।

३) जैनेन्द्र कुमार का साध्य, निष्कर्ष ।

क) नैतिक आदर्शों की प्रतिष्ठा ।

१) नैतिक आदर्शों की प्रतिष्ठा ।

२) त्याग की भावना ।

३) नैतिक कर्तव्य ।

४) अहंभाव का दमन ।

५) निःसंग जीवन का आदर्श ।

६) नारी भूमिका और जैनेन्द्र ।

अध्याय पाँचवा

जैनेंद्र के उपन्यासों में नैतिकता को धक्का देनेवाली घटनाएँ

अ) विभिन्न कृतियों में धक्का देनेवाली घटनाएँ :

` परख ` में जैनेंद्रकुमार ने त्याग और निश्चल प्रेम के आदर्श की महिमा गायी है। पढा-लिखा सत्यधन आदर्श की महिमा बखान सकता है और दूसरों को आदर्श के मार्ग पर बढने के लिए उत्साहित कर सकता है, किन्तु जब आदर्श के अनुसार स्वयं आचरण करने की बात उठती है तो वह लाभ-हानि का हिसाब जोडने लगता है। आदर्श एवं व्यवहार के बीच विद्यमान इस खाई की ओर संकेत करते हुए जैनेंद्र कुमार इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि चारित्रिक दृढता और निष्कपटता, दोनों का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। सरल और निष्कपट कट्टो के लिए त्याग एवं निश्चल प्रेम को आदर्श का पालन बहुत स्वाभाविक है, जबकि हिसाब-किताबी सत्यधन, उस उच्च आदर्श के पालन की बात सोचते ही घबरा उठता है।

नैतिक प्रश्नों के आधार पर कथानक का गठन करने के उदाहरण ढूँढने के लिए जैनेंद्र कुमार की प्राय: सभी औपन्यासिक कृतियों को एक विहंगम दृष्टि से देखना आवश्यक है।

उपन्यासों के प्राय: सभी कथानक अंतर्मन में उठनेवाले संघर्ष पर आधारित हैं, और जैसा कि पहले कहा गया है कि व्यक्ति के अंतरमन में उठनेवाला द्वन्द्व, अन्तर्विरोगत्वा, परस्पर विरोधी नैतिक मान्यताओं एवं आदर्शों में होनेवाले संघर्ष का ही प्रकट रूप है।

उदाहरण के लिए ` परख ` का कथानक, सत्यधन और कट्टो के मन में उठनेवाले संकल्प-विकल्पों पर आधारित है। एक ओर आदर्श एवं प्रवृत्ति तथा

त्याग एवं लोभ की हिलोरों पर झूलता हुआ सत्यधन है, तो दूसरी ओर त्याग, निष्कपटता एवं नैतिक आदर्शों पर निष्ठा रखनेवाली कट्टो है, जिस में किसी प्रकार का विकार उत्पन्न नहीं होता।

सत्यधन की डाँवाडोल मनःस्थिति और कट्टो तथा बिहारी की निष्कपट निष्ठा के चित्रण को आधार बनाकर ही ` परख ` का कथानक रचा गया है।

समग्रत ` परख ` में जैनेंद्र ने स्वस्थ , सहज सामाजिक प्रेम अथवा विवाह का न तो चित्रण ही किया है, न उसे मान्यता ही दी है। सत्यधन के भावुक रोमानी आदर्शों की असफलता द्वारा एक सत्य भावुक रोमानी आदर्श की प्रतिष्ठा की है। ऐसा संबंध न तो व्यवहार में सहज संभव है, न आदर्श के रूप में स्पृहणीय ही। अपने अगले उपन्यासों में जैनेंद्र ने विवाह के इस रूप की प्रतिष्ठा नहीं की है।

जैनेंद्रकुमार को अपने पहले उपन्यास ` परख ` में जिस प्रेम का आदर्श प्रस्थापित करना था उसके बारे में वे पूरी तरह सफल नहीं हुए हैं। उनके पात्र सत्यधन कट्टो इन पात्रों के व्यवहार से ऐसा मालूम होता है कि वे अपनी बात का पूरा समर्थन नहीं कर सके। इस उपन्यास में नैतिकता को धक्का देनेवाली घटना का वर्णन नहीं है। फिर भी इन पात्रों के आदर्श, नैतिक दृष्टि से योग्य नहीं है।

जैनेंद्रकुमार का बहुचर्चित दूसरा उपन्यास ` सुनीता ` है। और आपने इस उपन्यास में सुनीता हरिप्रसन्न के सामने विवस्त्र होने की घटना का चित्रण किया है। यह घटना सामाजिक तथा वैयक्तिक नैतिकता को धक्का देनेवाली है। सुनीता, श्रीकान्त हरिप्रसन्न ये उपन्यास के प्रमुख पात्र है।

हरिप्रसन्न श्रीकान्त का मीत्र है। उसके मन में यौन आकर्षण के प्रति कुंठा है। इस कुंठा से उसे मुक्त करने के लिए वह अपनी पत्नी सुनीता को उसके साथ छोडकर कई दिन के लिए बाहर चला जाता है। हरिप्रसन्न एक दिन सुनीता को लेकर अपना क्रांतिकारियों का अज्ञात स्थल देखने के लिए जाता है। रात का सन्नाटा, छिटकी हुई चाँदनी इन बातों का उसके मन पर प्रभाव होता है और वह सुनीता को समूची पाने की अभिलाषा व्यक्त करता है इस प्रसंग का वर्णन इस प्रकार है।

' सुनीता ' में अनावरण प्रसंग को निम्नलिखित रूप से प्रस्तुत किया है -

' मुझे चाहते हो ? मैं यह हूँ,...' और कह कर सुनीता ने अपना जम्पर उतारकर रख दिया।

हरिप्रसन्न अचकचाया-सा बोला - ' भाभी ? '

सुनीता की वाणी में न व्यंग्य मालूम हुआ, न झल्लाहट। उसने कहा, ' मुझे ही चाहते हो न ? मुझे लो। ' और उसने अपने चारों ओर से साडी हटाना शुरू कर दिया।

....हरिप्रसन्न को कुछ सूझे न सूझता था। उसने शरीर पर अब शेष बची साडी को खोलने की चेष्टा में लगे हुए सुनीता के हाथों को जोर से पकड कर, मानों चीख कर कहा, ' भाभी। भाभी।। '

किन्तु सुनीता तनिक स्मिति के साथ बोली -' यह तो बाधा है, हरि। उसके रहते मुझको कैसे पाओगे ? उसे उतर जाने दो तब मुझे लेना। खुली मुझको ही लेना। मुझको ही नहीं चाहते ? '

और अपने हाथ छुडा कर अपने शरीर से चिपकी हुईं साडी को उसने फाड लिया। वह अंतिम वस्त्र भी चीर होकर नीचे सरक गिरा।[१]

यह प्रसंग जरूर ही नैतिकता को धक्का देनेवाला है क्यों कि कोईं भी पति अपनी पत्नी को दूसरे के सामने इस प्रकार विवस्त्र होने का अधिकार नहीं दे सकता पर सुनीता में पति भक्ति इतनी है कि उसने अपने को उसकी इच्छा पर छोड दिया और उसके बताये हुए कर्तव्य का पालन किया। हरिप्रसन्न तो इस प्रसंग के बाद भाग ही जाता है। न वह उसे स्वीकारता है और न ही वह पूरी तरह कुंठा से मुक्त हो जाता है। सुनीता श्रीकान्त के सामने सभी बातें बताती है और कहती है कि मैंने अपने आप को नहीं बचाया पर वो कहाँ चले गये मुझे पता नहीं।

`त्यागपत्र` जैनेंद्र का तृतीय लघु उपन्यास है। घर और बाहर की समस्या को लेकर शिल्प और नारी मूल्य की दिशा में यह जैनेंद्र का नया प्रयोग है। नवीनता के स्तर पर `त्यागपत्र` एक आत्मकथात्मक उपन्यास है। सर एम. दयाल अर्थात् प्रमोद अपनी मृणाल बुआ की मृत्यु से अवसन्न होकर अपनी चीफ जजी से त्यागपत्र देता है, क्योंकि अपनी आंतरिक चेतना और परिस्थिति की असहनीयता के चरम बिंदु पर पहुँचकर वह अत्यधिक संवेदनशील बन जाता है। अपनी बुआ की मृत्यु के लिए अपनी असमर्थता को जिम्मेदार समझता है।

प्रमोद की बुआ मृणाल अनिंद्य सुंदर है। बचपन से ही मातृपितृहीन हो गयी है। इसलिए भाईं और भावज के घर रहने के लिए आ गयी है। उनके कठोर अनुशासन में असहनीय वेदना सह रही है। स्कूल जाते जाते अपनी सहेली के भाईं से उसे प्रेम हो जाता है। परन्तु भाभी इस बात को पसंद नही करती। इसलिए बडी निर्दयता से उसकी पिटाईं कर देती है। इसके पहले

---

१) जैनेंद्र कुमार, `सुनीता,` पृष्ठ सं. १८४-१८५, गिरगाँव, बम्बई, नवम्बर १९५८ ई.।

मृणाल ने स्कूल में मास्टरजी से पिटवा लिया है। लेकिन तब अपनी सहेली की गलती को छिपाने के लिए वह खुद अपराधी बन गयी है। पर भाभी जब उसका स्कूल बंद कर देती है तो मृणाल का विद्रोह बढता है और आत्मपीडा भी।

'त्यागपत्र' में उन्होंने सामाजिक मर्यादा और नैतिक व्यवस्था के प्रश्न को इस रचना का आधार बनाया है। उपन्यास के प्रारम्भ में यह प्रश्न उठाया गया है कि मृणाल पापिष्ठा थी या नहीं ? पति द्वारा परित्यक्ता मृणाल, कोयले बेचने वाले की रखैल के रूप में रहती है। फिर भटकते-भटकते अन्त में वेश्याओं, चोरों और अपराधियों की संगति में जा पहुँचती है। वहीं उसकी मृत्यु हो जाती है। ज्यों-ज्यों प्रमोद अपनी बुआ मृणाल के बारे में सोचता है, त्यों-त्यों उसे महसूस होने लगता है कि पतिता होने पर भी वह महान थी, क्यों कि उसने सच्चाई को अन्त तक नहीं छोडा। इस प्रकार 'त्यागपत्र' में उन्होंने पाप-पुण्य की नैतिक मान्यताओं के मूल्यांकन को अपनी रचना का आधार बनाया है।

मृणाल का चरित्र सामाजिक द्रोह के समानान्तर अतृप्ति और आत्मपीडन से अभिशाप्त है। व्यक्तिवादी चेतना से युक्त मानसिक अधोगति के स्तर पर मृणाल का आत्मपीडन भोगना यथार्थता का प्रतीक है।

मृणाल के माध्यम से जैनेंद्र ने फिर घर और बाहर की समस्या को उठाया है। मृणाल न घर तोडना चाहती है न समाज। समाज की मंगलाकांक्षा में समाज से अलग होकर वह खुद टूट जाती हैं।

'कल्याणी' आत्मकथात्मक शैली में लिखा गया उपन्यास है। इस में पात्रोल्लेख की प्रविधि अपनायी गयी है। कल्याणी की कथा के निवेदक और प्रस्तुतकर्ता वकील साहब है।

SHIVAJI UNIVERSITY LIBRARY KOLHAPUR

श्रीमती कल्याणी असरानी एक महत्वाकांक्षी डॉक्टर है। कल्याणी अपने छात्र जीवन में विदेश के एक युवक से प्रेम करने लगी थी। वर्तमान में वही प्रेमी देश का प्रिमीयर है। कल्याणी जब वापस लौटती है तो दुष्ट घटना चक्र में फँसकर डॉक्टर असरानी से विवाह करने के लिए बाध्य हो जाती है। यहाँ से उसके जीवन की विडम्बना का प्रारम्भ हो जाता है। कल्याणी अपने असफल दांपत्य जीवन में पत्नी के रूप में पाने के नीचतापूर्ण कृत्यों को सहन करती रहती है। डॉ. असरानी एक व्यावसायिक बुद्धि का डाक्टर है, जो कल्याणी को पत्नीत्व से प्रेयसित्व की ओर ले जाने के लिए प्रिमीयर को घर पर दावत देता है। धीरे-धीरे पत्नीत्व को छोडना न चाहनेवाली कल्याणी पति से संघर्ष करती हुई घर और बाहर की समस्या का उत्तर खोजती हुई स्वयं ' मृणाल ' की भाँति टूटती है।

' कल्याणी ' की समस्या भी मूलत: नैतिक समस्या ही है। आदर्श एवं प्रवृत्ति, भोग एवं त्याग के संघर्ष की कहानी को उपन्यास की नायिका कल्याणी, के माध्यम से कहकर उसकी आत्मिक छटपटाहट को व्यक्त किया है। पति की स्वार्थपरकता के कारण पति में भक्ति रखने में असमर्थ कल्याणी अपने दोष का परिमार्जन करने के लिए आत्मपीडन की ओर प्रवृत्त होती है और मृत्यु का आव्हान करती है। कल्याणी के जीवन में घोर मानसिक क्लेश और अन्त में उसकी मृत्यु दिखाकर जैनेंद्र कुमार ने पातिव्रत्य के नैतिक आदर्शों तथा इसके व्यावहारिक रूप के बीच उत्पन्न होनेवाली आधुनिक काल की विषमता का चित्रण कर दिया है। संपूर्ण कथानक में गृहिणी और डाक्टरनी, प्रिया और प्रगल्भा, अतीत और वर्तमान, ईश्वर भिरुता और भौतिक लिप्सा इनके बीच का मध्यम मार्ग खोजने में असफल कल्याणी के जीवन का उतार और चढाव चित्रित है।

`सुखदा` लेखक के विश्रांतीकाल के पश्चात् का पहला उपन्यास है। यह उपन्यास आत्मकथात्मक शैली में प्रस्तुत किया गया है। उपन्यास की नायिका सुखदा एक अस्पताल में तपेदीक की बीमारी से ग्रस्त होकर रुग्ण शैय्या पर पडी हुई है। वह अपनी आपबीती बता रही है। सुखदा एक अच्छे परिवार की युवती थी। जिसने अपने मन में पति और परिवार संबंधी बहुत से सपने पाल रखे थे। परन्तु उसका विवाह कान्त नामक एक ऐसे युवक से संपन्न हुआ जिसकी आमदनी कुल १५०-०० रुपया से अधिक न थी।

विवाह के प्रारंभिक काल में पति के प्रेम के प्रभाव में सुखदा सुखी थी। पर जैसे ही उस प्रारंभिक प्रेम के प्रभाव से मुक्त हो गयी उसे जीवन की वास्तविकता का अनुभव हुआ। वह स्वयं को खोखला महसूस करने लगी। स्वप्न और सत्य के फर्क ने उसके जीवन को दुष्कर बना लिया था।

एक दिन एक क्रांतिकारक, नौकर के रूप में सुखदा के घर आकर रहने लगा। कुछ काल के पश्चात् यकायक नौकर ने नौकरी छोड दी। वह पुलीस के द्वारा पकडा गया।

इसी समय एक और क्रांतिकारी लाल के क्रांतिकारी कार्य से और व्यक्तित्व से सुखदा प्रभावित हो गयी। अपनी घर की उकताहट को दूर करने के लिए लाल के साथ सुखदा भी क्रांतिकारी कार्य में सहयोग देने लगी, और घर के बाहर निकल पडी।

सुखदा और लाल के बीच अगला प्रसंग चित्रित किया है वह सामाजिक तथा वैयक्तिक नैतिकता को धक्का देनेवाला है। वह इस प्रकार है।

`सुखदा` उपन्यास में वह प्रसंग इस प्रकार है -

' वह क्षण मुझे भूलता नहीं - जीवन और मृत्यु के बीच का वह क्षण। दोनों मानों एक होकर इस क्षण में पिघल आये थे। इस तरह बाघ के से अपने सख्त पंजों में मेरे कंधे को कसे, मेरी आँखों को वह ऐसे देख रहे थे जैसे नहीं बूझ पाते हों कि मैं हूं, कि क्या हूं....वह क्षण अनन्त होता चला गया। समय तब न था, और वह पल त्रिकाल जितना अनन्त था कि देखते-देखते सहसा हिंसा से उन्होंने मुझे अपने आप में जकड़कर दबोच लिया। उस समय मैंने शारीरिक और आत्मिक दोनों किनारों से अनुभव किया कि मैं नहीं हुई जा रही हूं। मरी जा रही हूं, निश्चय जीने से अधिक हुई जा रही हूं। कब मुझे अलग किया और छिटका कर दूर फैंक दिया, मैं नहीं जानती। मैं सोफे में आ गिरी। वह कोच में ही बैठे- - ' कहा - ' जाओ, बच गयी तुम। '[१]

' सुखदा ' में हम ऐसी नारी का चित्र देख सकते हैं जो पारिवारिक जीवन और सामाजिक जीवन में सामंजस्य खोजने का प्रयत्न कर रही है। परन्तु उस में सफल न होने के कारण निराशा का अनुभव करते हुए आत्मपीडा भोग रही है। यह नायिका मूलत: नैराश्यपूर्ण मनोव्यथा ग्रसित नायिका है। जो पति प्रेम से अतृप्त रहकर पर पुरूष के प्रेम की अभिलाषिणी बन गयी। परन्तु उसकी आत्मपीडा ने उसे जीवन संघर्ष में उसे हरा दिया और वह मृत्यु मार्ग की यात्री बन गयी।

' विवर्त ' वर्णनात्मक शैली में लिखा गया जैनेंद्र का प्रथम नायक प्रधान अथवा पुरूष प्रधान उपन्यास है। उपन्यास का नायक जितेन संपादकीय विभाग में काम करता है, और रिटायर्ड जज की संतान भुवन मोहिनी के आकर्षण में बंधा हुआ है। दोनों के प्रेम में गरीब और अमीरी का अंतर बाधा बन जाता है। और भुवनमोहिनी का विवाह इंग्लैड रिटर्न बैरिस्टर नरेशचंद्र के साथ संपन्न होता है।

----

१. जैनेंद्रकुमार, ' सुखदा, ' पृष्ठ १६२, शाहादरा, दिल्ली, १९७८ ई.।

जितेन एक असफल प्रेमी बनकर शहर छोड देता है और क्रांतिकारी बन जाता है। एक रात ट्रेन के उलट जाने के कारण वह भुवनमोहिनी के घर में आश्रय ले लेता है। वह बीमार हो जाता है। अपने क्रांतिदल की आवश्यकता के लिए धन प्राप्ति के हेतु वह भुवनमोहिनी के आभूषणों को चुरा लेता है। जितेन आभूषणों के बदले धन की माँग करने के लिए अपने साथियोंद्वारा भुवनमोहिनी को गुप्त स्थान पर बुलाता है, जहाँ भुवनमोहिनी जितेन की कुंठा दूर करने के लिए आत्मसमर्पण करती है। उससे जितेन को पुलीस के सामने आत्मसमर्पण करने की प्रेरणा मिलती है।

' विवर्त ' में प्रेम और विवाह समस्या के रूप में नहीं लिये गये, न उनका विश्लेषण हुआ है, न पात्रों की उक्तियों के माध्यम से उसे यथेष्ट विस्तार मिला है, किंतु कथा की घटनाओं और पात्रों के विश्लेषण के माध्यम से जैनेंद्र की चिर-परिचित अवधारणाओं की ही पुष्टि इस उपन्यास में भी हुई है।

' विवर्त ' का नायक जितेन तो असफल प्रेम की चोट से तिलमिलाकर हिंसा का मार्ग अवलंब कर बैठता है। उसके पुन: सही मार्ग पर आने, अर्थात नैतिक आचरण की ओर प्रवृत्त होने को लेकर, ' विवर्त ' के कथानक की रचना की है।

' विवर्त ' की कथा ' सुखदा ' की कथा के समान ही प्रेम की असफलता, आर्थिक विषमता, और क्रांतिकारिता में आत्म समर्पण आदि मे समान है। जैनेंद्र के मतानुसार क्रांति समज की नींद तोडने का अस्त्र है। यहाँ नायिका भुवनमोहिनी का अहं प्रेम की कुंठा से मुक्त करते में उदात्त बन गया। इस उपन्यास में प्रत्यक्ष वर्णन सहित नैतिकता को धक्का देनेवाली घटना वर्णन नहीं है। फिर भी कथानक का गठन नैतिक आदर्शों में नहीं चित्रित किया है। असफल प्रेमी और उदार पति का चित्र भुवनमोहिनी को बीच में रखकर खिंचा है।

नायक ' जयंत ' के द्वारा प्रस्तुत ' व्यतीत ' जैनेंद्र का आत्मकथात्मक शैली में लिखा गया उपन्यास है।

जयंत की प्रेमिका अनीता है, पर उसका विवाह जयंत के साथ नहीं होता। मिस्टर पुरी के साथ होता है। परन्तु अनीता विवाहिता होकर भी जयंत की चिंता में लीन रहती है। जयंत एक वृत्तपत्र में सहसंपादक का काम कर रहा है। इस नौकरी से जयंत सिर्फ ७५-०० रुपये प्रतिमास वेतन प्राप्त करता है। अर्थात् उसका सहसंपादकत्व दरिद्रता का ही साधन है। इसलिए अनीता यह चाहती हैं कि जयंत यह नौकरी छोड दे और कहीं अन्य स्थान पर नौकरी प्राप्त करके अधिक अच्छा वेतन कमाएँ। परन्तु अनीता के ये प्रयत्न निष्फल हो जाते हैं। अनीता का प्रेम प्राप्त न होने के कारण असफल जयंत कुंठा का शिकार हो जाता है। न तो वह नौकरी छोडता है न वह भूतपूर्व प्रेमिका अनीता की इच्छा के अनुसार गृहस्थी भी बसा लेता है। बस अंदर ही अंदर घुटता रहता है। कुछ काल के पश्चात् जयंत के जीवन में उसकी चचेरी बहन ' चंद्रिका ' का आगमन हो जाता है और उसके प्रति आकृष्ट होकर जयंत उससे विवाह बध्द हो जाता है। इस विवाह में उसको कोई संतोष नहीं, क्यों कि अपनी प्रेमिका अनीता को भूलना उसके लिए असंभव बात है।

इस उपन्यास में नैतिकता को धक्का देनेवाले तीन प्रसंग है। उनमें दो प्रसंग महत्वपूर्ण तथा एक प्रसंग गौण है। गौण प्रसंग का सिर्फ निर्देश किया है और बाकी दो प्रसंगों का विश्लेषण इस प्रकार है।

' व्यतीत ' में भी चंद्रिका का स्वयं विवस्त्र होने का एक प्रसंग इस प्रकार है।

' सुनकर दो-क्षण मुझे ऐसा देखा। कैसी निगाह थी। फिर एका-एक लिहाफ - कंबल एक ओर फेंककर वह खड़ी हो आयी। रात की इकहरी यथावश्यक पोशाख में उसकी ऊँचाई कुछ और ऊँची हो गयी। आँखों में तड़पती बिजली, बदन तना जैसे कमान। चित्त को जाने कैसा आव्हान हुआ। घबराकर कहा - क्या करती हो, सर्दी खा जाओगी। '

नहीं समझा सका, क्या हुआ। सब कुछ हो सकता था। उस नारी मूर्ति में सब संभावनाएँ लहक आयी। शायद वे ही आपस में गूँथ बैठी। वह मूर्ति अपनी जगह से न हिली न डुली। जैसे निष्काम ज्वाला हो। धीमे से कहा -' चन्द्री सर्दी लग जायेगी। '

दांत मिसमिसाकर झटके से तन के तनिक से अंतिम वस्त्र को उतारकर मेरे मुंह पर जोर से फेंकते हुए कहा,' लो अब तो नहीं लगेगी सर्दी।'[१]

' व्यतीत ' में एक दूसरा प्रसंग इस प्रकार है। अनिता भी पुरुष के पुरुषत्व को निमंत्रण देने की ढिठाई से चूकती नहीं। जयंत से कहती है - ' स्त्री देह को शास्त्र ने अशुचि कहा है। पाप की खान बताया है। तुम यही मानते हो न जयन्त ? हम सब क्या वैसे ही हैं ? सब अशुचि है, अपावन हैं - नहीं तो तुम भागते क्यों हो जयन्त ?....

बोलो जयन्त। बस, आज का दिन है और वह खुद दे गये हैं, फिर कुछ मेरे पास नहीं बचेगा....मैं तुमसे पूछती हूँ स्त्री डायन है ? खा जायेगी ? लूट लेगी ? भ्रष्ट कर डालेगी ? आज तुम उत्तर देने से जयन्त बच नहीं सकोगे....।'[२]

---

१) जैनेंद्रकुमार,' व्यतीत,' पृष्ठ सं. ८६, नई दिल्ली, १९८४ ई.।
२) जैनेंद्रकुमार,' व्यतीत,' पृष्ठ सं. १२०, नई दिल्ली, १९८४ ई.।

BARR. BALASAHEB KHARDEKAR LIBRARY
SHIVAJI UNIVERSITY KOLHAPUR

`व्यतीत` में और एक प्रसंग स्त्री की प्रगल्भता का है। सुमिता की प्रं धृष्टता का एक प्रसंग इस प्रकार है - "मोटार में सुमिता दूसरी हो आयी। घर में वह सदा सभ्य थी लेकिन मोटार का एकांत जैसे घर न हो। वहाँ उसकी प्रगल्भ धृष्ठता पर मुझे असमंजस हुआ। मैं एक और अलग हटा - पर हटने की कितनी जगह थी। मैंने निश्चयपूर्वक हाथ को अलग हटाया। यह अपमान ही था। सिसकारती-सी बोली, यू सिस्सी, यू डेयर।"[१]

पत्नी चंद्री द्वारा किया गया आत्मसमर्पण वह ठुकराता है क्योंकि उसके मन में भूतपूर्व प्रेमिका अनीता का असफल प्रेम कुंठा के रूप में है। इसलिए जयंत के मन की कुंठा को मिटाने के लिए अनीता जयंत के सामने आत्मसमर्पण कर डालती है, तभी उससे जयंत विरक्त हो जाता हैं। अर्थात् जयंत की कुंठित कामभावनाओं की पूर्तता के लिए अनीता सहायक सिध्द होती है। अपने बंधन से मुक्त कर उसकी पत्नी की ओर उन्मुख कर देती है।

इस प्रकार पत्नीत्व और प्रेयसित्व दोनों प्रकार के कर्तव्यों को निभाती है। `व्यतीत` उपन्यास मे बुध्दि और हृदय या भावना और व्यवहार के संघर्ष के आलेख में जीवन की व्यस्तता का चित्रण किया गया है।

`जयवर्धन` जैनेंद्रकुमार का उपन्यास उनकी निरंतर विकसित दार्शनिक चेतना और गांधीवादी विचार धारा की परिणति कहा जा सकता है। यह एक बहुचर्चित उपन्यास है। जिस में डायरी शैली का उपयोग किया है। एक अमरिकी पत्रकार बिल्बर्ट शोप्डन हुस्टन के द्वारा जयवर्धन के जीवन की झाँकी के रूप में इसका कथानक प्रस्तुत किया गया है।

इस उपन्यास की नायिका इला जयवर्धन के साथ बारह वर्ष से पत्नि के रूप में रह रही है पर उन दोनों ने विवाह नहीं किया है क्योंकि उसके पिता

---

१) जैनेंद्रकुमार, `व्यतीत,` पृष्ठ सं. ३२-३३, नई दिल्ली, १९८४ ई.।

विवाह को अनुमति नहीं देते है । इस प्रकार बिना विवाह के रहना यह एक अपने आप में वैशिष्टय पूर्ण घटना है । वह एक दिन अपने गोपनीय प्रेम रहस्य का उद्घाटन मिस्टर हुस्टन के समक्ष करती है । वह प्रसंग इस प्रकार है ।

` जयवर्धन ` की इला भी मि. हुस्टन के समक्ष अपने गोपनीय प्रेम-रहस्यों का वर्णन करते हुए कहती है - " फैले हाथ बढते मेरी ओर आते ही गये और प्यार से बिगडा मेरा यह नाम ` इली ` पहाडों पर पहाड खाता गूंज-गूंजकर मेरे कानों के पर्दों पर पडता मेरे सूनेपन में रमता गया....

....उन हाथों ने न मुझे छुआ, आँचल के छोर को ही तनिक उठाया, और उसे अपने होठों और फिर आँखों से लगाया, मेरे सारे गात में काँटे सिहर आये, आँखें बन्द हो गयीं, कानों में फुसफुसी, मानों नीरव वाणी में सुनती गयी.....इली.....?

ओह जाने कैसी पुकार थी ? काल के किस छोर से वह चली आ रही थी । मेरे सूनेपन में से बोल उठा : लो, लो, मुझे लो....तभी एक हल्का-सा परस मेरी उँगलियों को छू गया, सारे गात में एक-साथ बिजली दौड गयी और मै वर्जना करती चिल्लाई नहीं, नहीं, नहीं.... ।"[१]

जयवर्धन के व्यक्तित्व का एक अन्य पहलू है, वह विवाह के संस्थान में विश्वास नहीं रखता है, उपन्यास का प्रधान पात्र इला नित्य उसके संपर्क में आता है । इला के पिता इसका विरोध करते हैं । भारतीय संस्कृति के एक पुजारी चिदानंद भी इला के कारण जयवर्धन के विरोधियों में समाविष्ट होते है ।

---

१) जैनेंद्रकुमार, ` जयवर्धन,` पृष्ठ सं. ९५, दरियागंज, दिल्ली, सन १९८६ ई.।

जयवर्धन के पदत्याग के बाद पश्चात् इला के पिता जयवर्धन से विवाह करने के लिए इला को अनुमति दे देते हैं। पर उसी रात जयवर्धन गायब हो जाता है।

जयवर्धन के प्रेम और विवाह का जो आनंद जैनेंद्र ने चित्रित किया है, उसी से जयवर्धन के निजत्व का निर्माण दिखाया है। इस प्रकार उपन्यास में प्रेम, विवाह, राजनीतिक पदत्याग, आदि से संघर्ष करने वाले नायक के व्यक्तित्व का निर्माण साकार हो गया है।

इस प्रकार उन्होंने इस उपन्यास में सामाजिक पारिवारिक तथा राजनितीक नैतिकता को धक्का दिया है।

` जयवर्धन ` के बाद १० वर्ष के पश्चात् लिखा गया उपन्यास ` मुक्तिबोध ` जैनेंद्र के राजनीतिक और सामाजिक बोध को और उनके जीवन दर्शन को उजागर करता है। यह उपन्यास भारत की केन्द्रीय सत्ता में होनेवाले विशिष्ट परिवर्तनों की आवश्यकता और प्रतिक्रिया इनका एक जीता जागता आलेख है।

` मुक्तिबोध ` का नायक ` सहाय ` एक काँग्रेस सदस्य और मन्त्री होने के बावजुद गांधीवादी विचारधारा से प्रभावित था।

इस उपन्यास में जो नैतिकता को धक्का देनेवाला प्रसंग चित्रित किया है वह इस प्रकार है।

` मुक्तिबोध ` उपन्यास का नायक सहाय जिसकी उम्र अब चौवन साल की है और उसकी प्रेयसी जिसकी उम्र अब बयातीस की है। दोनों भी भिन्न भिन्न व्यक्तियों से विवाहित हैं फिर भी एक दूसरे को हद से ज्यादा चहाते हैं। उनके बारे में एक प्रसंग प्रस्तुत उपन्यास में है। वह इस प्रकार है -

" मैं इस प्रकरण को बढाना नहीं चाहता हूँ। सूरजकुण्ड पर आकर देखा कि सामान में बहुत कुछ है। दो मुडने वाली कुर्सियाँ तक हैं। फलास्क में कॉफी है और लंच का पूरा सरंजाम है। मैं इस सब के लिए कतई तैयार न था। पर तैयारी का प्रश्न ही न रह गया था। गाडी रोक कर उसने उस खंडहर में अपने लिए जगह छाँटी कि जहाँ जरा ओट थी और धूप खुली आ सकती थी। कुण्ड पर करीब सन्नाटा ही था। उसने कुछ सामान मुझे दिया, कुछ अपने हाथ में लिया और चाबी लगाकर गाडी को किनारे छोड दिया। एकांत जगह पर आकर उसने कैन्वास की कुर्सियाँ फैला दीं। सामान नीचे पटक दिया। कपडे उतारने लगी। अन्दर उसने बेदिंग सूट पहना हुआ था। आकर कुर्सी में फैल गई, कहा - " तुम भी कुर्सी लेलो। सूर्य-स्नान नहीं करोगे ? " या कपडे लादे रहोगे ? कुर्सी की पीठ कर लो सूरज की तरफ। "[१]

नीला हँसी। बोली - " यानी उपासिका के कपडे पहन लूँ, यह पसंद है। वह तो पहलूँगी ही। लेकिन सूरज भी है और धूप बदन को छू जाय तो इस में कोई खतरा नहीं है। "

" सच बताओ तुम क्या चाहती हो ? "

ऐसा लगता है तुम्हें कि मैं और कुछ चाहती हूँ ? जीने से कुछ और ? और जिलाने से कुछ और ? " " हाँ लगता है। "

" मुझे नहीं मालूम था, हाय कि, तुम्हारा दिल इतना कमीना हो गया है। "

मैं सुनकर चौंका। मुझे यह आशा न थी, मैं अपने से झगड रहा था, उस पर लाने के लिए मेरे मन में आरोप-अभियोग तनिक न था।

---

१) जैनेंद्रकुमार, " मुक्तिबोध, " पृष्ठ सं. ५२, दरिया गंज, दिल्ली, १९७८ ई.।

नीला ने हँसकर कहा, " तुम्हारे कूठ मगज के लिए, और किसलिए ? " मुझे सच मुच क्रोध हो आया ।

कहा, मगज का इलाज तुमने बदन में समझ रखा है, क्यों ? " वह और भी हँस आई, बोली, " मर्ज और इलाज सब शरीर में होते हैं बन्द । पर मर्ज, कुछे में इलाज । "

" इसीलिए अपने शरीर का तुम्हें गुमान है । "[१]

" हाँ, इसीलिए । बुध्दि का गुमान तुम्हारी तरह मुझे तो नहीं हो सकता है शरीर का ही हो सकता है । "

" ये सब नहीं होगा नीला । मुझे तुम वापस पहुँचा सकती हो ? "

" जरूर पहुँचा सकती हूँ । कह कर वह मुस्कराई और कुर्सी पर बाहें पीछे करके उसने अँगडाई ली । इसमें टाँगे दोनों आगे को तन आई और अँगडाई के बाद बदन शिथिल हो गया । उसके उठने और तैयार होने के कोई आसार नहीं दिखाई दिये । तो मैने कहा, " उठों नहीं, अभी चलना होगा । "[२]

संक्षेप में जैनेंद्र ने हमेशा की, घर और बाहर की विषमताओं को त्यागकर व्यक्ति के अंतर बाह्य का चित्रण किया है । सहाय की आत्मपीडा का चित्रण उपन्यास की उपलब्धि है । पूरे उपन्यास का कथानक सिर्फ चार दिनों के अवकाश में घटित होता है ।

इस उपन्यास में लेखक ने राजनीतिक पारिवारिक तथा सामाजिक नैतिकता को धक्का दिया है ।

---

१) जैनेंद्रकुमार, ' मुक्तिबोध,' पृष्ठ सं. ५३-५४, दरिया गंज, दिल्ली, १९७८ ई. ।
२) जैनेंद्रकुमार, ' मुक्तिबोध,' पृष्ठ सं. ५४-५५, दरिया गंज, नई दिल्ली, १९७८ ई. ।

` अनन्तर ` को ` जयवर्धन ` उपन्यास में प्रकट विचारधारा की विकसित अथवा प्रौढ कृति कहा जा सकता है। यह उपन्यास आत्मकथात्मक शैली में प्रस्तुत किया हैं। उपन्यास का नायक ` प्रसाद ` अपने पुत्र और पुत्रवधु को जो मधुपर्व मनाने के लिए जा रहे हैं, उनको स्टेशन पर विदा करने जाता है। और वहाँ से लौटते हुए अपने जीवन की व्यर्थता को अनुभव करता है।

व्यर्थता बोध की स्थिति में वह पलायन का मार्ग अपनाना चाहता है और अपने गुरु ` आनंद माधव ` और ` अपरा ` का प्रस्ताव सुनकर माऊँट अबू पर उनको ले चलता है। प्रसाद अंतरमुखी चेतना से ग्रस्त है। ` जयवर्धन ` और ` मुक्तिबोध ` उपन्यास के समान राजसत्तात्मक बोध के स्तर पर वह व्यक्ति मुक्ति चाहता है, परन्तु अपरा के माध्यम से माऊँट अबू पर विरक्तता के स्तर पर इन्वॉल्वमेंट खोजना चाहता है।

इस उपन्यास में नायक प्रसाद तथा अपरा के बीच जो प्रसंग है वह नैतिकता को धक्का देनेवाला है। क्यों कि अपरा प्रसाद की पत्नि नहीं है फिर भी वह प्रसाद के साथ मात्र परिचारिका के रूप में सफर कर रही है। वह प्रसंग इस प्रकार है।

` अनन्तर ` उपन्यास में जो प्रसंग है वह कुछ इस प्रकार है -

` बुरा न मानियगा, आपके लिए मुझ में भूल नहीं हो सकती - आप वृध्द हैं नहीं जितने बनते लगे है। ऐसी हालत में यदि मैं आपकी सुविधा बन सकूं तो इस में से क्या किसी को घबराना चाहिए ? प्रौढ या वृध्द होने से ही क्या पुरूष के प्रति स्त्री का कर्तव्य समाप्त हो जाता है ? या युवती होने से स्त्री बरी हो जाती है ? मैं उन युवतियों-सी नहीं हूं जो पुरूष को उसके यौवन के लिए चाहती हैं। `[१]

---

१) जैनेंद्रकुमार, ` अनन्तर, ` पृष्ठ सं. २९१ शहादरा, दिल्ली, १९८४ ई.।

उसी उपन्यास में दूसरा प्रसंग कुछ इस प्रकार हैं -

" जी नहीं, आप डरिए नहीं। न्याय का अंतिम रूप मेरे लिए यह है कि मैं अपने को गिनती में न लूं। इसलिए जब मुझे कुछ भी गिना जाने लगता है तो वही सहना कठिन हो जाता है। सोच-विचार कर मैंने पा लिया है और मैं स्त्री हूं तो पुरूष के प्रति यह मानने में मुझे संकोच नहीं होना चाहिए। दोनों ओर स्वास्थ्य तभी रहेगा। अपने को अलग अनछुआ और पवित्र रहने का जो भाव बीच में आकर बाधा बनता है, वही हर्ज और जुर्म है। वह अनसोशल है, अनगॉडली है। उसी से जितनी होती दु:ख-दुविधा पैदा होती है और स्वत्व के उसी भाव को ऊँचे उठाए रखने के लिए तरह-तरह के आप्तवचन गढ लिए गये हैं। उन्हीं के कारण कुंठा और क्लेश उपजते हैं - सोचा था, प्रसाद तुम इन चीजों से उठ चुके होगे। खैर जाने दो। "[१]

अपरा प्रसाद के साथ मात्र परिचारिका के रूप में नहीं आयी है, पत्नीत्व की रिक्तता को भरने के लिए आयी है। अत: पत्नीवत व्यवहार करना उसका धर्म हो गया है, इसी से रेल में ठीक समय पर नींबू पानी देने के साथ पत्नी के रूप में आचरण करने का प्रयत्न करती दिखाई देती है :

" अपरा ने एकायक बैठकर मेरे चेहरे को हाथों में लिया, माथे पर चूमा, कहा " गुड नाईट " और बिना देर लगाये वह अपनी बर्थ पर पहुँच गयी। "[२]

सम्भवत: पाश्चात्य सभ्यता की अभ्यस्त अपरा के लिए यह सहज व्यवहार हो।

---

१) जैनेंद्रकुमार, " अनन्तर, " पृष्ठ सं. २९, शहादरा, दिल्ली, १९८४ ई.।
२) जैनेंद्रकुमार, " अनन्तर, " पृष्ठ सं. ३१, शहादरा, दिल्ली, १९८४ ई.।

प्रसाद के लिए नारी का स्वेच्छाचार आतंकपूर्ण बात है। परन्तु अपनी पुत्री ` चारू ` के नारीत्व का दूसरे के सामने समर्पण अपने घर के निर्माण के लिए योग्य समझकर उसका स्वीकार करता है। यह प्रसाद का पारिवारिक स्तर पर अपने अंतर जगत से अपने बाह्य को जोडने का प्रयास है।

लेखक ने इस उपन्यास में पारिवारिक तथा वैयक्तिक नैतिकता को धक्का दिया है।

` अनामस्वामी ` उपन्यास में ` त्यागपत्र ` के ` प्रमोद ` के त्यागपत्र देने के पश्चात के जीवन का चित्रण इस उपन्यास में किया गया है। प्रथम एक दो परिच्छेदों में चिंतन परक विश्लेषण प्राप्त होता है और कथात्मकता नगण्य हैं। फिर से बारह परिच्छेद लिखकर कथात्मकता का आशय प्रकट किया है।

प्रमोद के बालजीवन का एक साथी प्रबोध अब ` अनामस्वामी ` है। उसका एक आश्रम है, जिस में अहंकार और अहंता के ज्वार से मुक्त जीवन जीने की कल्पना साकार करने का प्रयत्न किया गया है।

शंकर उपाध्याय और अनामस्वामी में बहुत तीव्र ईर्ष्या हैं, जिसका कारण रानी वसुंधरा जो शंकर उपाध्याय की भक्त है, और उन्हीं के दूसरे भक्त कुमार की विवाहिता है।

इस उपन्यास में नैतिकता को धक्का देनेवाली घटना शंकर उपाध्य और वसुंधरा इन दोनों के बीच है। उसका वर्णन इस प्रकार है।

` उपाध्याय क्लब के प्राण थे। स्फूर्ती प्रेरणा ही थे, लेकिन क्लब की उत्तीर्णता से भी वह उत्तीर्ण थे। तनिक भी उच्छृंखल व्यवहार उनमें नहीं देखा गया। मानो मुक्तता प्रदान करनेवाले केंद्रस्थ वह चित्-पुरुष थे। यदि कहीं किसी चित्त के आंतर प्रान्त में संकोच का उद्रेक होता, अथवा असमंजस का कण

शेष रह जाता, तो अपनी वाणी के प्रखर प्रताप से उस सब द्विविधा को आध्मीकृत करके वह उस चित्त को स्वस्थ, मुक्त, निश्शंक बना देते थे। अन्त:करण ही है जो कचोटा करता है। वहाँ से आप नैतिक, सामाजिक को हटा देते हैं, प्राकृतिक आध्यात्मिक को बिठा देते हैं तो द्वन्द्व मिट जाता है, निर्द्वन्द्व उपलब्ध हो आता है। द्वन्द्व जिस में नहीं है, वही है फिर सत्य, वही अद्वैत, वहीं शुध्द-बुध्द-मुक्त परम कैवल्य।

वसुन्धरा की काया मात्र आदर्श की तो बनी न थी। वय का तारूण्य उसमें था, रक्त की उष्मा उसमें थी....तुम यह नहीं हो। वस्त्र हैं, और वस्त्र गिर जायेंगे। धारणायें एक-एक कर के उतरती जायेंगी। तुम यह नहीं हो, आत्मा हो, तुम प्रकाश हो। तुम उठ रही हो। बन्धन गिर चुके हैं। आवरण शरीर का भी नहीं रह गया है। प्रकाश की शिखा हो तुम, लौ की भाँति उठ रही हो तुम ऊपर, ऊपर और ऊपर....भार जाता रहा है। नृत्य की थिरकन में जीवन को चैतन्य की लीला होने दो....तुम दिव्य हो, असीम हो....हो ध द्रुत और द्रुत और द्रुत....

शनै: शनै: औरों के साथ लालायमान चेतना की मुग्धता में समर्पित प्राय: निर्वसन हो आती है वसुन्धरा।.....किन्तु क्या स्वीकार्य होती है? नहीं, वह देव पुरूष को अतिकान्त है। अर्पण का उपहार लेकर वह मेनका लरजती, इतराती, अंगीकरण माँगती उस शरण में आने को बढ़ती है। और वह कैन्द्रस्थ शिखर विद्रूप, पुरूष अट्टाहास कर उठता है....

यह है चित्र जो खंड-खंड के योगफल में से मुझे प्राप्त होता है और जिसकी दारूणता पर मैं थर्रा आता हूँ।"[1]

---

1) जैनेन्द्रकुमार, "अनामस्वामी," पृष्ठ १२४-१२५, दरियागंज, दिल्ली, १९८४ ई.।

परंतु शंकर द्वारा वसुंधरा का समर्पण न केवल ठुकराया जाता है अपितु शंकर उपाध्याय वसुंधरा की हत्या का कारण बन जाता है ।

इस उपन्यास में पारिवारिक तथा आध्यात्मिक नैतिकता को धक्का दिया है ।

निष्कर्ष :

इस अध्याय में जैनेंद्रकुमार की सभी औपन्यासिक कृतियों में नैतिकता को धक्का देनेवाली घटनाओं का परिचय और कौन से प्रकार की नैतिकता को धक्का दिया है इसका विवेचन किया है । ` परख ` उपन्यास में लेखक जो आदर्श प्रस्थापित करना चाहते हैं वह व्यवहार में लाना मुश्कील है । ` सुनीता ` में जो प्रसंग है वह वैयक्तिक पारिवारिक तथा सामाजिक नैतिकता को धक्का देनेवाला है । ` त्यागपत्र ` में मृणाल का मानसिक तथा शारीरिक स्खलन दिखाया है और उसका आदर्श तथा उसके विचार भी सामाजिक और पारिवारिक नैतिकता को धक्का देनेवाले हैं । ` कल्याणी ` की समस्या मूलतः नैतिक समस्या है । आत्मपीडन, त्याग, पति सेवा इन बातों का वर्णन इस में चित्रित है । वह भी प्रेमी और पति इन दो के बीच उलझी हुई नायिका है । ` सुखदा ` में हम ऐसी नारी का चित्र देख सकते हैं जो पारिवारिक जीवन और सामाजिक जीवन में सामंजस्य खोजने का प्रयास कर रही है । परन्तु उस में सफल न होने के कारण निराशा का अनुभव करते हुए आत्मपीडा भोग रही है । ` विवर्त ` की कथा ` सुखदा ` की कथा के समान ही प्रेम की असफलता, आर्थिक विषमता और क्रांतिकारिता में आत्म समर्पण आदि में समान है । ` व्यतित ` उपन्यास में बुध्दि और हृदय या भावना और व्यवहार के संघर्ष के आलोक में जीवन की व्यस्तता का चित्रण किया गया है । ` जयवर्धन ` उपन्यास में जयवर्धन के प्रेम और विवाह का

जो आनंद जैनेंद्र ने चित्रित किया है, उसी से जयवर्धन के निजत्व का निर्माण दिखाया है । इस प्रकार उपन्यास में प्रेम, विवाह, राजनीतिक पदत्याग, आदि से संघर्ष करने वाले नायक के व्यक्तित्व का निर्माण साकार हो गया है । ' मुक्तिबोध ' में जैनेंद्र ने हमेशा की घर और बाहर की विषमताओं के परे व्यक्ति के अंतर बाह्य का चित्रण किया है । सहाय की आत्मपीडा का चित्रण उपन्यास की उपलब्धि है ।

' अनन्वर ' उपन्यास में ' प्रसाद ' का पारिवारिक स्तर पर अपने अंतर जगत से अपने बाह्य को जोडने का प्रयास किया है । लेखक ने इस उपन्यास में पारिवारिक तथा वैयक्तिक नैतिकता को धक्का दिया है । ' अनामस्वामी ' उपन्यास में पारिवारिक तथा आध्यात्मिक नैतिकता को धक्का दिया है ।

ब) घटनाओं का विश्लेषण और विवेचन

हमने इससे पहले इस अध्याय में जैनेन्द्रकुमार के विभिन्न उपन्यासों में नैतिकता को धक्का देनेवाली घटनाओं का संकलन किया है। अब हम उन घटनाओं का विश्लेषण और विवेचन करेंगे।

१) अश्लीलता, घटना पर निर्भर नहीं :

कामवासना से झुलसे हुए उपर्युक्त प्रसंगों के चित्रण के कारण यद्यपि जैनेन्द्रकुमार पर अश्लीलता को प्रश्रय देने के आरोप लगाये गये है, तो भी उनकी विशिष्ट चिन्तन-पद्धति के अनुसार इन प्रसंगों के वर्णन में किसी प्रकार की अश्लीलता अथवा अनैतिकता नहीं है। उनका तर्क है, "कि अश्लीलता यदि है तो वस्तु में नहीं, व्यक्ति में है।"[१]

बुराई या भलाई, अश्लीलता या शालिन्य, और अनैतिकता अथवा नैतिकता को वह व्यक्ति निर्भर मानते हैं, वस्तु अथवा घटना निर्भर नहीं। एक उदाहरण देते हुए कहते हैं – "युवक चिड़ियों और कबूतरों के जोड़ों को आसक्त भाव से देखता रह जाता है। अब हम क्या करें ? यह कहें कि चिड़िया या कबूतर अश्लील है, इसलिए उन पर आँख बन्द रखो, या कपड़े पहनाकर उन्हें सभ्य बनाना शुरू करो ? या यह कहें कि युवक अभी कच्चे हैं, खुली प्रकृति की अपेक्षा अभी पुस्तक में उन्हें अधिक ध्यान रखना चाहिये।"[२]

---

१) जैनेन्द्रकुमार, "साहित्य का श्रेय और प्रेय," पृष्ठ २, पूर्वोदय, दिल्ली, १९५३ ई.।

२) जैनेन्द्रकुमार, "साहित्य का श्रेय और प्रेय," पृष्ठ ३, पूर्वोदय, दिल्ली, १९५३ ई.।

२) अश्लीलता और कामोत्तेजक वर्णन :

इसी तर्क को आगे बढ़ाते हुए वे कहते हैं कि " नग्नता और आवरण से भी अश्लीलता के प्रश्न का सम्बन्ध नहीं । मैं कह सकता हूँ कि संभ्रान्त श्रेणी में पहनी जानेवाली चटकीली साड़ियाँ और निमन्त्रण देनेवाले जम्पर, ब्लाऊज अश्लील है और जंगल में लकड़ी बनती या घास छीलती नग्नप्राय एक भील युवती की मूर्ति में अश्लीलता नहीं । "[१]

इसलिए शरीर-वर्णन अथवा कामोपभोग के प्रसंगों के वर्णन मात्र को अश्लील न मानकर, इसके पीछे मनोवृत्ति के आधार पर ही अश्लीलता अथवा अनैतिकता का निर्णय करते हैं । जहाँ ऐसे प्रसंगों का वर्णन रस लेकर किया जाता है, अथवा चाहे चोरी-छिपे भी क्यों न हो, इन प्रसंगों से भोग पक्ष की ओर ध्यान खिंचा जाता है वहीं पर वे अश्लीलता का आभास पाते हैं, किन्तु जहाँ इन प्रसंगों की सहायता से मानव चरित्र को समझाने का प्रयास किया जाता है, वहाँ अश्लीलता नहीं है । इस सम्बन्ध में उनका कथन है, " जहाँ शरीर व्यापार द्वारा मनोवृत्ति को समझने समझाने अथवा उससे भी आगे बढ़कर उसके भीतर से आत्म-धर्म की शोध या प्रतिष्ठा का प्रयास है वहाँ अश्लीलता नहीं है । "[२]

निष्कर्ष :

उपर्युक्त कसौटी पर कसने के बाद स्पष्ट हो जाता है कि जिन तथाकथित अश्लील प्रसंगों पर आपत्ति उठायी गयी है, वे प्रसंग तो जैनेंद्रकुमार के मतानुसार अशील अथवा अनैतिक नही कहे जा सकते । इन प्रसंगों द्वारा

---

१) जैनेंद्रकुमार, " साहित्य का श्रेय और प्रेय," पृष्ठ ४, पूर्वोदय, दिल्ली, सन १९५३ ई.।

२) जैनेंद्रकुमार, " साहित्य का श्रेय और प्रेय," पृष्ठ ४, पूर्वोदय, दिल्ली, सन १९५३ ई.।

उन्होंने अपने पात्रों की मनोवृत्ति के उदघाटन का प्रयास किया है, और साथ ही एक ऐसे आदर्श की स्थापना का यत्न किया है जो अपने-आप में महान् ही नहीं, अपितु, समस्त मानवता के लिए परम साध्य भी है। उदाहरण के लिए सुनीता के अनावरण प्रसंग को ही लें।

अपने पति श्रीकांत में अटल भक्ति रखनेवाली सुनीता अपने पति के आदेश का अनुसरण करती हुई हरिप्रसन्न के मन की ग्रन्थि को खोलने का प्रयास करती है। अनावरण के प्रसंग में उसके मनमें कोई घृणित भावना नहीं, बल्कि कर्तव्य भावना है और पति में अटल भक्ति है। हरिप्रसन्न के साथ जाने के पूर्व वह अपने पति के चित्र को प्रणाम करती है और वापस लौटने पर श्रीकांत से स्वयं ही निर्भयतापूर्वक स्वीकार करती है, "मैं तुमसे सच कहती हूँ कि मैंने उससे यही कहा है कि वह जावें नहीं रुकें। सच कहती हूँ, मैंने अपने को नहीं बचाया। जाने वह कहाँ गये हैं। मुझे डर लगता है।"[1]

सुनीता के मन में किसी प्रकार का कपट या छल नहीं है, अपितु, हरिप्रसन्न के जीवन प्रयोजनपूर्ण बनाने के लिए वह अपने पति के आदेशों का आँख मूँद कर पालन करती है।

"सुखदा," "व्यतित," "जयवर्धन" में स्त्री की प्रगल्भ धृष्टता के प्रसंगो द्वारा जैनेंद्र ने मानव मन के उदघाटन का प्रयास किया है। इनमें रस लेने अथवा पाठकों की कामोत्तेजना को भड़काने का उनका प्रयोजन न होकर उन्होंने काम के विविध रूपों की पृष्ठभूमि में मानव-मन की गहराईयों पर ही प्रकाश डालने का प्रयास किया है। इसलिए, इन्हें अश्लील अथवा अनैतिक प्रसंगों की श्रेणी में रखना अनुचित है।

---

१) जैनेंद्रकुमार, "सुनीता," पृष्ठ १८५-१८६, गिरगाँव, बम्बई, सन १९५८ ई.।

"मुक्तिबोध" में "जैनेंद्र सामन्ती नैतिकता को प्रस्तुत करते हैं जो पत्नी (स्वकीया) को गृहस्थी का उपकरण मानती है और विलास के लिए परकीया की छूट देती है। वे पत्नी की जो प्रतिमा देते हैं वह पूरी तरह परम्परागत धर्मपत्नी है।"[1]

जैनेंद्र जैसे प्रौढ़ लेखक से "अपरा" जैसे कमजोर चरित्र को पाकर ताज्जुब हो सकता है, लेकिन अगर हम ध्यान रखें कि स्त्री के प्रति उनकी दृष्टि रूमानी है - वे उसे प्रेम का विग्रह मानते हैं - तो वैसा नहीं होगा। एक जगह जैनेंद्र ने कहा है, "आज कल की यथार्थ दृष्टि है, यथार्थ है, स्त्री माया बन जाती है, मैं उसको अयथार्थ और असत्य मानता हूँ। जहाँ स्त्री देवी होने की तरफ बढ़े तो मानता हूँ कि दृष्टि की सत्यता है, यथार्थता भी है।"[2]

"अनन्तर" मनुष्य जीवन की वास्तविकता से बिल्कुल कटा हुआ है और रचना स्तर पर जैनेंद्र की संभवतः सबसे दुर्बल कृति है। वह मानवीय समस्याओं के बारे कोई अन्तर्दृष्टि नहीं देती।

"अनामस्वामी" "इस उपन्यास के जरिये लेखक वास्तविक मानवीय अनुभव नहीं देता। ये पात्र जैनेंद्र के अमूर्त नैतिक चिन्तन के उदाहरण भर हो गये हैं। बिना आज के मानवी सम्बन्धों में रिक्तता का साक्षात्कार कराये जैनेंद्र एक जीवन दृष्टि के रूप में प्रेम-साधना को रखते हैं इसलिए वे एक प्रवचन कर्ता की भूमि-पर होते है - रचनाकार की भूमि पर नहीं।"[3]

---

१) नवल किशोर, "आधुनिक हिन्दी उपन्यास और मानवीय अर्थवत्ता," पृ. ६५, नई दिल्ली, सन १९७७ ई.।

२) नवल किशोर, "आधुनिक हिन्दी उपन्यास और मानवीय अर्थवत्ता," पृ. ६८, नई दिल्ली, सन १९७७ ई.।

३) नवल किशोर, "आधुनिक हिन्दी उपन्यास और मानवीय अर्थवत्ता," पृष्ठ ७१, नई दिल्ली, दिसम्बर, १९७७ ई.।

क) निष्कर्ष

१) नैतिक आदर्श की प्रतिष्ठा :

कथानक के विकास पर जैनेंद्र कुमार के दार्शनिक चिन्तन का जो प्रभाव पड़ा है, उसके विवेचन के उपरान्त अब कथानक के उपसंहार पर उनकी नैतिक मान्यताओं के प्रभाव का अवलोकन अवशिष्ट है। कथानक के गठन और विकास में जैनेंद्र कुमार ने जिस सोद्देश्यता का परिचय दिया है, उसका आभास कथानक के उपसंहार में सर्वत्र मिलता है। उन्होंने जिन नैतिक प्रश्नों एवं समस्याओं को कथानक के प्रारम्भ में उठाया है, उनके बारे में कथानक के उपसंहार में यथोचित उत्तर एवं हल भी सुझाये हैं। किन्तु, इन समस्याओं का हल प्रस्तुत करने की उनकी पध्दति बिल्कुल निराली है। उपन्यास के अन्त में वे जिस आदर्श की प्रतिष्ठा करते हैं, उसमें से ही अप्रत्यक्ष रीति से, नैतिक समस्या का हल ध्वनित होता है। इसलिए उनके उपन्यासों के उपसंहार में किसी समस्या के तुले-तुले हल की यदि अपेक्षा की जाये तो निराश होना पड़ेगा। अपनी नैतिक मान्यताओं एवं धारणाओं को कथानक के उपसंहार पर थोपने और इसे यथेष्ट मोड़ देने के चक्कर में न पड़कर, जैनेंद्रकुमार ने बड़ी ही कुशलता से कथानक के उपसंहार में अप्रत्यक्ष रीति से, अपने नैतिक आदर्शों की झलक प्रस्तुत की है।

त्याग की महिमा :

उनके प्रथम उपन्यास ' परख ' में वे चित्रित करते हैं कि - धन-संपत्ति एवं यश-समृध्दि की कामना मानव का स्वाभाविक धर्म है, किन्तु इससे ऊपर उठकर भी एक आदर्श है जिसमें धन सम्पत्ति निःसार है, पर-सेवा और प्रेमभाव ही सर्वोपरि है। अतः ' परख ' के उपसंहा द्वारा जैनेंद्रकुमार ने पर-सेवा के

सम्मुख भौतिक समृद्धि और त्याग के सम्मुख भोग की हीनता ही दिखायी है। उपन्यास के अन्त में कट्टो और बिहारी के आत्मिक विवाह, तथा कट्टो द्वारा समस्त संपत्ति सत्धन को देने की घटना द्वारा जैनेंद्रकुमार कथानक का उपसंहार ऐसा आदर्शपूर्ण बना देते हैं कि जिस में भोग के प्रति अनासक्ति एवं पर-सेवा में अनुरक्ति ही जीवन का चरम साध्य बन जाता है।

प्रेम और विवाह के अतिरिक्त " अनन्तर " में अपरा और प्रसाद के माध्यम से स्त्री-पुरुष संबंध का एक और पक्ष भी लिया गया है। प्रसाद आबू में आयोजित सम्मेलन में भाग लेने के लिए आमंत्रित है। उनकी देखभाल के लिए उनकी पत्नी का साथ उन्हें अपेक्षित है किन्तु पारिवारिक कारणों से पत्नी साथ जा नहीं सकती, अतः उनके साथ अपरा को भेजने की व्यवस्था कर दी जाती है। अपरा रामेश्वरी के स्थान पर भेजी गयी है, अतः पत्नीवत व्यवहार करना अपना धर्म समझती है, अपने स्वार्थ के लिए नहीं, प्रसाद के लाभ के लिए।

अपरा में गलत क्या है ? अपरा क्यों प्रसाद की " आफिशियेटिंग वाईफ " बन गयी है ? क्या यह संबंध अनैतिक एवं अवैध नहीं है ? अपरा के व्यवहार पर पाठक अनेक प्रश्न चिन्ह लगाता है किन्तु अपरा इन सब प्रश्नों पर अत्यंत स्वस्थ एवं सहज दीखती है। अस्वस्थ यदि होता है तो प्रसाद, अपरा में किसी प्रकार का आवेश या असमंजस नहीं है।

बासठ वर्ष की आयु में प्रसाद अपरा के लिए " आब्जेक्ट आॅफ लव्ह " नहीं हो सकता, यह प्रसाद भी जानता है फिर प्रसाद के प्रति अपरा के आकर्षण का कारण क्या है ? इसका स्पष्टीकरण भी लेखक ने अपरा के माध्यम से दिया है, " बुरा न मानिएगा, आपके लिए मुझमें भूख नहीं हो सकती - आप वृद्ध हैं नहीं जितने बनने लगे हैं। ऐसी हालत में यदि मैं आपकी सुविधा बन सकूँ तो इस में से क्या किसी को घबराना चाहिए ?

प्रौढ या वृद्ध होने से ही क्या पुरुष के प्रति स्त्री का कर्तव्य समाप्त हो जाता है ? या युवती होने से स्त्री बरी हो जाती है ? " मैं उन युवतियों-सी नहीं हूँ जो पुरुष को उसके यौवन के लिए चाहती है। " यहाँ प्रसाद की ओर से प्रश्न उठता है, क्या यह अपरा के साथ अन्याय नहीं है ? किन्तु अपरा इस ओर से भी निश्चिंत है, क्योंकि स्त्री-पुरुष संबंध की जिस अवधारणा में उसका विश्वास है वह पुरुष के प्रति अनिवार्यतः निःस्वार्थ समर्पण की ही है। " न्याय का अन्तिम रूप मेरे लिए यह है कि मैं अपने को गिनती में न लूँ। इसलिए जब मुझे कुछ भी गीना जाने लगता है तो वही सहना कठिन होता है। सोच-विचार कर मैंने पा लिया है कि अगर मैं स्त्री हूँ तो पुरुष के प्रति मानने में मुझे संकोच नहीं होना चाहिए। दोनों और स्वास्थ्य तभी रहेगा। अपने को अलग अनछुआ और अपरिछिन्न रहने का जो भाव बीच में आकर बाधा बनता है, वही दर्प और जुर्म है। वह अनशीशल है, अनमौडली है। उसी से जितनी दुःख-दुविधा पैदा होती है और सत्त्व के उसी भाव को ऊँचे उठाये रखने के लिए तरह-तरह के आप्त वचन गढ लिये गये हैं। उन्हीं के कारण कुंठा और क्लेश उपजते है।"[1]

अपरा प्रसाद के साथ मात्र परिचारिका के रूप में नहीं आयी है, पत्नीत्व की रिक्तता को भरने आयी है। अतः पत्नीवत व्यवहार करना उसका धर्म हो गया है, इसी से रेल में ठीक समय पर नींबू पानी देने के साथ पत्नी के रूप में आचरण करने का प्रयत्न करती दिखायी देती है : " अपरा ने एकाएक बढ़कर मेरे चेहरे को हाथों मे लिया, माथे पर चूमा, कहा " गुड नाईट " और बिना देर लगाये वह अपनी बर्थ पर पहुँच गयी।"[2]

---

१) जैनेंद्रकुमार, " अनन्तर," पृष्ठ २९, पूर्वोदय, दिल्ली, सन १९८४ ई.।
२) जैनेंद्रकुमार, " अनन्तर," पृष्ठ ३१, पूर्वोदय, दिल्ली, सन १९८४ ई.।

संभवतः पाश्चात्य सभ्यता की अभ्यस्त अपरा के लिए यह सहज व्यवहार हो। वन्या के यहाँ पहुँचकर अपरा के चरित्र में आकस्मित परिवर्तन होता है, " वन्या के इस डेरे पर अपरा हम लोगों की चर्चा में बिलकुल शामिल नहीं होती है। मीरी परिचारिका बनी हर छोटे-मोटे काम में अपने को फँसायें रखती है। मुझे अपने हाथ से गिलास पानी भी नहीं लेने देती। कपडे धोती है, नहाती है, जूते पर पालिश करती है, झाडू लगाती है। किन्तु यहाँ भी वह पत्नी के कर्तव्य को भूल नहीं पाती, आधी रात उठकर वह प्रसाद के कमरे में सोने के लिए चली जाती है। वन्या को यह अमर्यादित एवं अनैतिक प्रतीत होता है, किन्तु अपरा निर्द्वन्द्व है, " अब बताइए आप ही की रात को इन्हें कुछ जरूरत पड जाए और मैं गैरहाजिर मिलूं तो इनकी पत्नी रामेश्वरी जी को मैं क्या जवाब दूँगी। नागवार तो आप को लगा होगा। लेकिन धर्मपत्नी नहीं हो सकी हूँ, तो उनके अभाव में क्या-क्या उप-पत्नी बनने के कर्तव्य से भी मुझे बचना चाहिए ?"[१]

पत्नी के अतिरिक्त किसी अन्य स्त्री के साथ पत्नीवत संबंध पुरुष और स्त्री के बीच चलते आये हैं, किन्तु उपपत्नीत्व की यह अवधारणा जिसे " कार्यकारी पत्नी " द्वारा अधिक स्पष्ट किया जा सकता है, जो भावना से सर्वथा शून्य है, जिसमें स्त्री पत्नी के रूप में तभी तक है जब तक पत्नी किसी कारण वश उपलब्ध नहीं है पत्नी के आने पर वह अपदस्थ कर दी जाएगी और फिर उसके प्रति किसी प्रकार का दायित्व या भावात्मक अनुभूति का अवकाश नहीं होगा - जैनेंद्र की सर्वथा मौलिक सूझ है। इसी से जैनेंद्र अपरा को आयु में उससे सत्ताईस वर्ष बड़े प्रसाद और उनके दामाद आदित्य दोनों के लिए

---

१) जैनेंद्रकुमार, " अनन्तर, " पृष्ठ २४, पूर्वोदय, दिल्ली, सन १९६८, ई.।

पत्नीत्व के कार्य पर नियुक्त कर पाये हैं। इस प्रकार के पद के लिए आयु अथवा संबंध कोई महत्व नहीं रखते। अपरा का दर्शन स्पष्ट है, "मैं स्त्री हूँ, अपने धर्म को नहीं भूल सकती हूँ, फिर सबसे निकृष्ट स्त्री हूँ। स्त्री के प्रति पुरुष में प्यार हो तो मैं उसका सत्कार ही कर सकती हूँ।"[1]

स्त्री का यह गणिका अथवा सार्वभोग्या नारी का रूप लग सकता है, किन्तु जैनेंद्र ने इसे इतना सरल और सहज नहीं रहने दिया है। जैनेंद्र इसे प्रीती का मार्ग, प्रभू का मार्ग कहते हैं, अतः इस कठोर, दुर्धर्ष मार्ग पर चलनेवाले को अनेक कठिनाईयों का सामना करना पडता है। होटल के एक कमरे में आदित्य के साथ रहते हुए भी अपरा के लिए स्त्री-पुरुष का भोग प्रधान नहीं है। वह एक यज्ञ में है।

आदित्य इस में अपने पौरुष की अवज्ञा समझता है, स्वयं पीडित होता है, अपरा को पीडित करता है, किन्तु अपरा सब कुछ सह लेती है, वह तिल-तिल जल रही है धर्म के नाम पर, परहित के लिए। किन्तु तत्कालीन नैतिक अवधारणाओं में अपरा के लिए दुरदुराहट के अतिरिक्त और कुछ नहीं है, इसे जैनेंद्र जानते हैं।

उनके अनुसार अपरा "नियमों में नहीं है। लेकिन जिस चीज को लेकर अनियमित है, वह वस्तु अनिष्ट नहीं अभिष्ट ही प्रतीत होती है।"[2] इसी से वह प्रसाद के माध्यम से स्पष्ट शब्दों में कहते हैं कि मैं अपरा को गलत नाहीं मानता। वस्तुतः जैनेंद्र के चिन्तन के आलोक में, अपरा का दूसरा ही रूप सामने आता है। उसका संबंध चाहे प्रसाद के साथ हो या आदित्य के साथ,

---

१) जैनेंद्रकुमार, 'अनन्तर,' पृष्ठ ११८, पूर्वोदय, दिल्ली, सन १९६८ ई.।
२) जैनेंद्रकुमार, 'अनन्तर,' पृष्ठ ९३, पूर्वोदय, दिल्ली, सन १९६८ ई.।

वह स्वार्थ का संबंध नहीं है, उच्च, उदार, नि:स्वार्थ ईश्वरीय प्रेम है, वह केवल सुखकर या प्रीतिकर नहीं है उसमें असीम कष्ट है।

प्रसाद के साथ रहकर वह नौकरानियों की तरह काम करती है, वैसे ही कपड़े पहनती है, फर्श पर नौकरानी के साथ सोती रही है, और आदित्य के साथ उसके प्राणों तक पर संकट रहा है, किन्तु अपरा ने सब सहा है। अपरा का आदित्य के साथ इस प्रकार अकेले रहने के लिए चले जाना, जोखिम से सर्वथा शून्य नहीं था, दोनों जिस प्रकार की तनावपूर्ण स्थिति में रहे हैं, उसमें दोनों में से किसी की भी हत्या अथवा आत्मघात कुछ भी संभव था, किन्तु अपरा जोखिम का यह खेल मात्र खेल के लिए नहीं खेल रही, यह उसका परीक्षण है, तप है, और इस में सफल होकर जब वह शुभेश्वरी तथा चारू के पास पहुँचती है तब उसकी स्थिति दोनों के सामने स्पष्ट हो जाती है।

३) <u>नैतिक कर्तव्य</u> :

' सुनीता ' के प्रारम्भ में हरिप्रसन्न के बारे में श्रीकान्त की नैतिक उलझन और कर्तव्य का संकेत देकर जैनेंद्रकुमार ने, उस कर्तव्य की पूर्ति में उपन्यास का अन्त किया है। श्रीकान्त में हरिप्रसन्न के जीवन को प्रयोजनपूर्ण बनाने की नैतिक जिम्मेदारी की भावना इतनी प्रबल है कि उस जिम्मेदारी को पूरा करने में वह अपनी पत्नी से सर्वस्वदान करने की अपेक्षा करता है। सुनीता भी पति के आदेश पालन करने में दत्तचित्त हो जाती है और किसी प्रकार के नैतिक असमंजस में न पड़कर हरिप्रसन्न के जीवन को रचनात्मक एवं उपयुक्त दिशा में मोड़ने में सफल होती है। गृहस्थ का निराश्रय के प्रति, मित्र का मित्र के प्रति और पत्नी का पति के प्रति जो नैतिक कर्तव्य होना चाहिए उसकी ओर संकेत करके जैनेंद्रकुमार ने ' सुनीता ' के कथानक का उपसंहार किया है।

४) अहंभाव का दमन :

पाप और पुण्य के प्रश्न की समीक्षा से जैनेंद्रकुमार ने " त्यागपत्र " का आरम्भ किया है और इसी प्रश्न का उत्तर देकर इस उपन्यास का अन्त किया है। जैनेंद्रकुमार के मतानुसार आत्मपीडा का बहुत महत्त्व है। क्योंकि अहंभाव को धीरे-धीरे गलाकर यह आत्मा को शुध्द बनाता है। आत्मपीडा में आत्म-शुध्दि के उपाय को ढूँढने की क्रिया भले ही तिरस्कारपूर्ण दृष्टि से देखी जाये, किन्तु जैनेंद्रकुमार की नैतिक मान्यताओं के हिसाब से इसे बहुत महत्त्व है। मृणाल के पतन में चारित्रिक श्रेष्ठता का संकेत देने के लिए ही उपन्यास के अन्त में प्रमोद द्वारा जजी से त्यागपत्र देने के प्रसंग का उल्लेख किया गया है। इस प्रकार जैनेंद्रकुमार ने मानों नैतिक-अनैतिक एवं पाप-पुण्य की सांसारिक कसौटियों से ऊपर उठकर, आत्म-पीडन द्वारा आत्म-परिष्कार की कसौटियों से ही मान्या-चरण की श्रेष्ठता आँकी है।

" कल्याणी " की समस्या भी मूलतः नैतिक समस्या ही है। आदर्श एवं प्रवृत्ति, भोग एवं त्याग, के संघर्ष की कहानी को उपन्यास की नायिका कल्याणी, के माध्यम से कहकर उन्होंने उसकी आत्मिक छटपटाहट को व्यक्त किया है। पति की स्वार्थपरता के कारण पति में भक्ति रखने में असमर्थ कल्याणी अपने दोष का परिमार्जन करने के लिए आत्म-पीडन की ओर प्रवृत्त होती है और मृत्यु का आव्हान करती है। कल्याणी के जीवन में घोर मानसिक क्लेश और अन्त में उसकी मृत्यु दिखाकर जैनेंद्रकुमार ने पातिव्रत्य के नैतिक आदर्श तथा इसके व्यावहारिक रूप के बीच उत्पन्न होनेवाली आधुनिक काल की विषमता का चित्रण कर दिया है।

" सुखदा " और " व्यतित " के उपसंहार में जैनेंद्रकुमार, अहंभाव के दमन संबंधी अपने प्रिय आदर्श की ओर पुनः मुडते हैं। व्यतित में आत्मरति की भावना उसमें आत्मकेन्द्रीकरण की प्रवृत्ति को जन्म देती है जिसका परिणाम

यह होता है कि वह जीवन भर दुःखी, असन्तुष्ट एवं अशान्त बना रहता है। आत्मकेन्द्रीकरण की चरम अवस्था का दिग्दर्शन कराने के लिए जैनेंद्रकुमार ने सुखदा और जयन्त का अभिशप्त जीवन दिखाया है। अपने पति, कान्त से विमुख और अपने रूप एवं बुद्धि पर गर्व करने वाली सुखदा, अपना जीवन कान्त के साथ बाँटना नहीं चाहती। जयन्त भी चंद्री के साथ, आत्मरति की भावना के कारण, एकात्मकता स्थापित करने में असमर्थ रहता है।

परिणाम यह होता है कि रुग्ण सुखदा अस्पताल में अपने जीवन के खण्डहरों पर दृष्टिपात करती हुई पश्चाताप की अग्नि में जलती है, और जयन्त गैरिक वस्त्र धारण करते पर भी अपने मन में निष्फल जीवन से उत्पन्न अवसाद की भावना को ही पालता घूमता है।

" अनामस्वामी " में कहानी अनाम अथवा उसके आश्रम की नहीं, शंकर उपाध्याय तथा वसुंधरा की है। इस कथा में जैनेंद्र के पाठकों के लिए कुछ भी नया नहीं है। यह प्रेम का वही पुराना त्रिकोण है, जिस में कुमार के रूप में जैनेंद्र का चिरपरिचित " पति " चरित्र है, जो अत्यंत उदारता से अपनी पत्नी को उसके प्रेमी की ओर सायास धकेलता रहता है। वसुंधरा के रूप में असाधारण सुंदरी जैनेंद्र की वह नायिका जो प्रेमी से उसका प्रेम के लिए प्रार्थना करती हुई ठुकराईजाती है। शंकर उपाध्याय के रूप में जिस चरित्र की अवतारणा की गई है, वह अवश्य ही कुछ नवीनता लिये हुए है।

समग्रत: " अनामस्वामी " में प्रेम तथा विवाह की अपेक्षा ब्रह्मचर्य को मुख्य प्रतिपाद्य के रूप में प्रस्तुत कर जैनेंद्र ने अपने सामाजिक चिन्तन का स्वरूप और स्पष्ट कर दिया है। ब्रह्मचार्य के रूप में काम का उन्नयन मानव के नैतिक उत्कर्ष का लक्षण है। अत: जीवन-लक्ष्य के रूप में " ब्रह्मचर्य " की स्थापना की गयी है।

५) निःसंग जीवन का आदर्श :

अपने अगले उपन्यास ` जयवर्धन ` में जैनेंद्रकुमार ने सांसारिक ऐश्वर्य एवं सुखोपभोग के प्रति अनासक्ति एवं निःसंगता के आदर्शों की प्रतिष्ठा की है। प्रधान मन्त्री के पद पर आसीन जयवर्धन के लिए उच्चपद एवं वैभव निःसार-सा है, मानो कर्तव्य समझकर ही वह इस पद पर आसीन है, नहीं तो कभी का इसे त्याग दिया होता। ऐसे मनस्वी जयवर्धन के लिए यदि ऐश्वर्य - वैभव मिट्टी के समान है तो कामोपभोग भी निःसार-सा है। इला के साथ बारह वर्ष तक इकट्ठा रहने के बावजूद वह काम-विजय का ही परिचय देता है। जैनेंद्रकुमार ने उपन्यास के अन्त में जयवर्धन द्वारा राजसत्ता के ऐश्वर्य के साथ-साथ विवाहिता इला के त्याग का संकेत करके वस्तुतः त्याग, निःस्पृहता, निःसंगता और अनासक्ति के चरम आदर्श की महिमा गायी है।

६) नारी मुक्ति और जैनेंद्र :

` मुक्तिबोध ` उपन्यास में उपन्यास का नायक सहाय और उसकी प्रेयसी नीलिमा के संबंध में अपना दृष्टिकोण इस प्रकार प्रकट करते हैं।

यहाँ सहाय के माध्यम से जैनेंद्र स्वीकार करते हैं कि तर्क के धरातल पर वे स्त्री के व्यक्तित्व की स्वतंत्र प्रतिष्ठा की बात करते हैं, किन्तु व्यवहार में पत्नी को धर्म-पत्नी ही बने देखना चाहते हैं। विचार और संस्कार के इस संघर्ष में कहीं विजय संस्कार की होती है तो कहीं विचार की। पत्नी के संबंध में जहाँ संस्कार प्रबल हो उठते हैं वहीं अपने निज के संदर्भ में तर्क द्वारा वे अनुचित को भी उचित बना लेते हैं, ` पति-पत्नी का संबंध केंद्र है। वह ध्रुव है कि जिसके आधार पर परिवार की एकत्रता और समाज की मर्यादाशीलता

खड़ी है । सही-गलत सब उसके संदर्भ में बनना चाहिए । लेकिन मैं नहीं जानता कि नीला को लेकर मुझमें क्या होता है । एक आत्मिक स्फूर्ति-सी मिलती है । राजश्री को लेकर वह नहीं हो पाता । वह विवाहित हैं, मैं विवाहित हूँ । इसी कारण उस शुभ सौहार्द को क्या निषिद्ध बना देना होगा ?"[1]

इसी तर्क के आधार पर सहाय नीला के साथ अपने सम्बन्ध का औचित्य सिद्ध कर लेते हैं । किन्तु सामाजिक मर्यादाओं और संस्कारिक भाव-बोध के कारण कभी-कभी इस संबंध के लिए संकुचित भी । होते हैं । पुरुष होते हुए भी सहाय इस ओर सचेष्ट हैं, जब कि स्त्री होते हुए भी नीलिमा ऐसे भाव-संकोच से मुक्त है ।

वस्तुत: नीलिमा के रूप में जैनेंद्र ने नारी-मुक्ति (Women Lib) में विश्वास करने वाली एक ऐसी नारी की सृष्टि की है जो सामाजिक बंधनों को अस्वीकार कर प्रकृतिवादी जीवन-दर्शन में विश्वास करती है, जहाँ संस्कारिता द्वारा हम प्रकृति से दूर होते जाते हैं और इस प्रकार झूठ की ओट सत्य से डरने लगते हैं ।

इसी दर्शन के आधार पर वह नग्न स्त्री शरीर को सत्य मानती है और उससे डरने वाले (सामाजिक मूल्यों अथवा संस्कारिक भावों के कारण) पुरुष को कायर । पुरुष में नारी-शरीर के प्रति एक डर समाया हुआ है, उसे सहज करने के लिए उसमें से वह डर निकालना होगा ।

'मुक्तिबोध' में नीला सहाय में से इस डर को निकालने के लिए प्रयत्नशील है, अपने शरीर की नग्नता के प्रदर्शन द्वारा ।

जैनेंद्र के आरंभिक उपन्यास 'सुनीता' में हरिप्रसन्न के मन में व्याप्त नारी-शरीर के प्रति जिज्ञासा का जो आत्यंतिक रूप में भय का ही

---

१. जैनेंद्रकुमार, 'मुक्तिबोध,' पृष्ठ ४३, पूर्वोदय, दिल्ली, १९७८ ई.।

रूप ले लेती है दूर करने के लिए सुनीता को हरिप्रसन्न के सम्मुख नग्न रूप में आना पड़ा था, तभी हरिप्रसन्न अपनी उस ग्रंथी से मुक्त हो सका था। किन्तु शरीर की नग्नता के अधिकार के रूप में ही नारी को स्वातंत्र्य या मुक्ति देने का विचार जैनेंद्र-दर्शन में है, स्वतंत्र सामाजिक इकाई वह उसे नहीं मान पाते।

निष्कर्ष :

इसलिए कुल मिलाकर जैनेंद्र की नारी धर्म-पत्नी के रूप में पति-पुरूष को धर्म में ही अपना अस्तित्व मिटा देने वाली है और प्रेमिका रूप में प्रेमी की सफलता की राह में उसकी अपेक्षाओं की पूर्ति का उपकरण मात्र है।